हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती आयुक्त (प्रशासन), मद्रास एवं एक अन्य

बनाम

वेदान्त स्थापना सभा

7 मई, 2004

[दोराईस्वामी राजू एवं अरिजीत पसायत, न्यायमूर्तिगण]

तमिलनाडु हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1959 :

धारा 6(11) - वंशानुगत न्यासी - वंशानुगत न्यासी के रूप में नियुक्त किए जाने का दावा - अभिनिर्धारित : धारा 6(11) में परिकल्पित उत्तराधिकार के तीनों में से किसी एक प्रकार की पूर्ति मात्र किसी व्यक्ति को वंशानुगत न्यासी के रूप में नियुक्ति हेतु वैध दावा करने में सक्षम बनाती है - न्यासी का पद वंशानुगत है अथवा अवंशानुगत, यह उस रीति अथवा पद्धति पर निर्भर करता है जिसके द्वारा संबंधित पदधारी उक्त पद धारण करता है।

धारा 63(ए) - सार्वजनिक मंदिर - घोषित किया जाना - वैधानिक प्राधिकारियों ने एक निश्चित मंदिर को समस्त उपासना करने वाली हिन्दू जनता के लिए सार्वजनिक मंदिर घोषित कर दिया - मंदिर की प्रकृति के संबंध में घोषणा हेतु धारा 63(ए) के अधीन कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया था - अभिनिर्धारित : ऐसी परिस्थितियों में, प्रश्नगत मंदिर को कुछ ऐसे कथनों के आधार पर सार्वजनिक मंदिर घोषित नहीं किया जा सकता था, जो वैधानिक उपबंधों से परे थे।

शब्द एवं वाक्यांश :

'वंशानुगत न्यासी' तथा "प्रथा (यूसेज)" - अर्थ - तमिलनाडु हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1959 की धारा 6(11) के संदर्भ में।

उत्तरदाता-सभा ने तमिलनाडु हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1959 की धारा 63(बी) के अधीन उप आयुक्त-अपीलकर्ता सं. 2 के समक्ष यह घोषणा किए जाने हेतु एक आवेदन दायर किया कि उत्तरदाता प्रश्नगत मंदिर का वंशानुगत न्यासी है। उप आयुक्त ने उक्त आवेदन को खारिज कर दिया। फलस्वरूप, उत्तरदाता ने अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष एक वैधानिक वाद दायर किया।

विचारण न्यायालय ने उत्तरदाता के दावे को अस्वीकार कर दिया। उत्तरदाता द्वारा दायर अपील को उच्च न्यायालय के एकल न्यायाधीश ने खारिज कर दिया। तथापि, उत्तरदाता द्वारा दायर लेटर्स पेटेंट अपील को खंडपीठ ने स्वीकृत कर लिया। फलस्वरूप, वर्तमान अपील दायर की गई।

अपीलकर्ताओं की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि प्रश्नगत मंदिर एक सार्वजनिक मंदिर था, जिसका निर्माण उत्तरदाता-सभा के सदस्यों से प्राप्त अंशदानों सहित संकलित निधियों तथा सरकार से प्राप्त अनुदानों द्वारा किया गया था; कि प्रश्नगत मंदिर केवल उत्तरदाता-सभा के सदस्यों के लाभ के लिए नहीं, बल्कि व्यापक हिन्दू जनता के लाभ के लिए था; और इस प्रकार प्रश्नगत मंदिर अधिनियम की धारा 6(20) के अंतर्गत आच्छादित नहीं था; कि वंशानुगत न्यासित्व की सामान्य विशेषता वंशानुगत अधिकार द्वारा उत्तराधिकार अथवा ऐसी स्थिति थी जहाँ उत्तराधिकार किसी प्रथा द्वारा विनियमित हो अथवा संस्थापक द्वारा विशेष रूप से उपबंधित किया गया हो; और कि ऐसा कोई उपबंध विद्यमान नहीं था,

इसलिए उत्तरदाता-सभा अधिनियम की धारा 6(11) के अधीन वंशानुगत न्यासी घोषित किए जाने की हकदार नहीं थी।

उत्तरदाता की ओर से यह प्रस्तुत किया गया कि प्रश्नगत मंदिर के निर्माण के समय से उसके प्रबंधन की दीर्घ अवधि स्वयं दीर्घकालिक प्रथा (यूसेज) का संकेत देती है।

अपील स्वीकृत करते हुए, न्यायालय ने :-

अभिनिर्धारित किया: 1. तमिलनाडु हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1959 की धारा 6(11), जो 'वंशानुगत न्यासी' को परिभाषित करती है, के साधारण पठन से तीन महत्वपूर्ण पहलू स्पष्ट होते हैं; अर्थात्, प्रथम, किसी धार्मिक संस्था का ऐसा न्यासी, जिसके पद का उत्तराधिकार वंशानुगत अधिकार द्वारा प्राप्त होता है; द्वितीय श्रेणी वह है जिसमें उत्तराधिकार किसी प्रथा (यूसेज) द्वारा विनियमित होता है; तथा तृतीय श्रेणी वह है जिसमें न्यासी के पद से संबंधित उत्तराधिकार का विशेष उपबंध संस्थापक द्वारा किया गया हो और वह भी तब तक, जब तक ऐसे उत्तराधिकार की योजना प्रभावी बनी हुई हो। अधिनियम की धारा 6(22) में अंतर्निहित मानदण्डों के विपरीत, धारा 6(11) की परिभाषा धार्मिक संस्था के न्यासी के पद के उत्तराधिकार के उक्त तीनों में से किसी एक प्रकार अथवा पद्धति से प्राप्त होने पर विशेष एवं विशिष्ट बल देती है। अधिनियम के अधीन विशेष रूप से गठित वैधानिक प्राधिकारियों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि मंदिर समस्त उपासना करने वाली हिन्दू जनता के लिए है और केवल सभा के सदस्यों तक सीमित नहीं है, जिसे निधियों के संग्रह की पद्धति तथा स्थापना के समय से मंदिर के दैनिक प्रशासन के संचालन की रीति को दृष्टिगत रखते हुए अभिनिर्धारित किया गया है। यद्यपि धार्मिक संस्था के न्यासी के पद को वंशानुगत घोषित किए जाने हेतु आवेदन प्रस्तुत किया गया था, तथापि अधिनियम की धारा 63(ए) के अधीन यह घोषणा प्राप्त करने के लिए कोई आवेदन प्रस्तुत नहीं किया गया कि

प्रश्नगत मंदिर ऐसी धार्मिक संस्था है अथवा नहीं, जिसका उपयोग सार्वजनिक धार्मिक उपासना के स्थान के रूप में किया जाता है तथा जो हिन्दू समुदाय अथवा उसके किसी वर्ग को समर्पित है, अथवा उनके लाभ के लिए है, अथवा जिसका उपयोग हिन्दू समुदाय अथवा उसके किसी वर्ग द्वारा अधिकारस्वरूप किया जाता है। वैधानिक प्राधिकारियों द्वारा संस्था के स्वरूप के संबंध में विशिष्ट निष्कर्ष दर्ज किए जाने के पश्चात् भी इस संबंध में स्पष्ट चूक ने उत्तरदाता-सभा को यह आकस्मिक अथवा अस्पष्ट दावा करने से वंचित कर दिया कि मंदिर केवल सभा के सदस्यों के लिए है। एक बार जब वह अधिनियम के अर्थ में धार्मिक संस्था है, तब अधिनियम के उपबंध पूर्ण रूप से प्रभावी हो जाते हैं और इस प्रकृति के दावे को, जब तक कि उसे अधिनियम में उपबंधित रीति से सिद्ध न किया जाए, केवल कुछ ऐसे कथनों के आधार पर स्वीकार नहीं किया जा सकता जो ऐसे वैधानिक उपबंधों से परे हों। [560-सी-एच; 561-ए]

डॉ. श्रीनिवासन बनाम आयुक्त, [2000] 3 एस.सी.सी. 548, का अवलंबन किया गया।

2. न्यासी का पद, चाहे वंशानुगत हो अथवा अवंशानुगत, यद्यपि किसी विशेष समय पर अथवा किसी निश्चित अवधि के लिए कोई पदधारी उस न्यासित्व के पद को धारण अथवा अधिष्ठित कर सकता है, किन्तु यह केवल वह रीति अथवा पद्धति है जिसके द्वारा संबंधित पदधारी उस पद पर आसीन होता है, जो इस बात का निर्णायक कारक है कि उस पद की प्रकृति एवं स्वरूप वंशानुगत है अथवा अवंशानुगत। [561-एफ]

3. जब तक किसी संस्थापक द्वारा न्यासित्व के पद के वंशानुगत उत्तराधिकार के माध्यम से हस्तांतरण के लिए, परिकल्पित किसी भी रीति अथवा पद्धति द्वारा, कोई उपबंध नहीं किया गया हो, तब तक यह दावा करना निरर्थक है कि मंदिर का कोई वंशानुगत न्यासी

है अथवा मंदिर के कार्यों का प्रबंधन या प्रशासन किसी वंशानुगत न्यासी द्वारा संचालित किया जा रहा है अथवा उत्तरदाता प्रश्नगत मंदिर का वंशानुगत न्यासी घोषित किए जाने का अधिकारी है। वर्तमान वाद में ऐसा कोई उपबंध न तो प्रदर्शित किया गया है और न ही विद्यमान पाया गया है। [568-डी-ई]

संबुदमूर्ति मुदलियार बनाम मद्रास राज्य, ए.आई.आर. **(1971) एससी 2363, का अवलंबन किया गया।**

मद्रास राज्य बनाम रामकृष्ण नायडू, **ए.आई.आर. (1957) मद्रास 758, अनुमोदित।**

ए.एन. रामास्वामी अय्यर बनाम आयुक्त, एच.आर. एंड सी.ई., **(1975) 2 एमएलजे 178, निरस्त किया गया।**

अंगूरबाला मुल्लिक बनाम देबरत मुल्लिक, **(1951) एस.सी.आर. 1125 तथा** *सीतल दास बनाम संत राम,* **ए.आई.आर. (1954) एससी 606, का संदर्भ दिया गया।**

पुनः *महिला संपत्ति का अधिकार अधिनियम,* **1937, ए.आई.आर. (1941) एफ.सी. 72;** *गणेश चन्द्र धुर बनाम लाल बिहारी,* ए.आई.आर. **(1936) पी.सी. 318;** *भबतातीणी बनाम आशालता,* ए.आई.आर. **(1943) पी.सी. 89;** तथा *श्री महन्त परमानन्द दास गोस्वामी बनाम राधा कृष्ण दास,* **ए.आई.आर. (1926) मद्रास 1012, उद्धृत।**

4. नामनिर्देशन, नियुक्ति अथवा किसी निश्चित अवधि के लिए समय-समय पर किसी व्यक्ति को निर्दिष्ट करने का अधिकार, भले ही ऐसे अधिकार से युक्त किसी निकाय द्वारा प्रयोग किया गया हो, उस पद को वंशानुगत पद नहीं बना देता ताकि ऐसे न्यासियों को मद्रास हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1951 अथवा तमिलनाडु हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1959 के अधीन परिभाषित 'वंशानुगत न्यासी' कहा जा सके।

धारा 6(11) में परिकल्पित उत्तराधिकार की तीनों में से किसी एक पद्धति द्वारा उत्तराधिकार एवं पद के हस्तांतरण के निश्चित नियम ही किसी व्यक्ति को वैध रूप से वंशानुगत न्यासी होने का दावा करने में सक्षम बना सकते हैं। [569-एफ-जी]

डॉ. श्रीनिवासन बनाम आयुक्त, [2000] 3 एस.सी.सी. 548, का अवलंबन किया गया।

5. प्रश्नगत मंदिर के संबंध में यह निष्कर्ष अभिलिखित किए जाने के आधार पर कि सभा मंदिर की संस्थापक थी अथवा संस्थापक होने के नाते उसे मंदिर के कार्यों तथा उसके प्रबंधन और यदि कोई संपत्ति हो तो उसके प्रशासन तथा भावी प्रबंधन के लिए भी उपबंध करने का पूर्ण अधिकार था, किए गए निवेदन महत्वहीन हो जाते हैं और वास्तव में इस न्यायालय द्वारा इस प्रश्न का विनिश्चय किए जाने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि क्या सभा अधिनियम के उपबंधों के अधीन स्वयं को 'वंशानुगत न्यासी' घोषित कराने की अधिकारी थी। इसी प्रकार, यह प्रश्न कि कोई निकाय न्यासी हो सकता है अथवा न्यासियों के बोर्ड का गठन कर सकता है, भी वर्तमान विवाद के लिए अप्रासंगिक है। यहाँ तक कि एक निकाय के रूप में भी, चाहे वह न्यासी होने का दावा कर सके अथवा नहीं, वर्तमान वाद के तथ्यों में वह स्वयं को वंशानुगत न्यासी होने का दावा नहीं कर सकती। [569-जी-एच; 570-ए-बी]

6. निस्संदेह, सामान्यतः कोई भी दाता, जो न्यास की स्थापना के समय अंशदान देता है, केवल उसी आधार पर स्वयं को न्यास का संस्थापक होने का दावा नहीं कर सकता; अपवादस्वरूप केवल ऐसे मामलों में, जहाँ न्यास निधि में अंशदान देने वाले सभी व्यक्ति स्वयं न्यास के संस्थापक हों। किसी व्यक्ति को संयुक्त संस्थापक माना जा सकता है या नहीं, इसका विनिश्चय केवल अंशदान किए जाने के तथ्य पर आधारित नहीं किया जा सकता, जब तक

कि वाद में सिद्ध की गई परिवेशगत एवं सहवर्ती परिस्थितियाँ तथा पक्षकारों का पश्चातवर्ती आचरण ऐसे निष्कर्ष को उचित न ठहराते हों। [570-सी-डी]

7. स्वयं सभा का अस्तित्व उस समय से केवल कुछ वर्ष पूर्व ही प्रारम्भ हुआ था जब वर्तमान उत्तरदाता द्वारा वाद दायर कर उक्त घोषणा की मांग की गई। "प्रथा (यूसेज)" की अभिव्यक्ति में दीर्घकालिक निरंतरता एवं समय के व्यतीत होने की अवधारणा अंतर्निहित है, तथा वर्तमान वाद की तथ्यात्मक स्थिति भी सभा को प्रथा (यूसेज) की अवधारणा के अनुप्रयोग को स्थापित करने में सक्षम नहीं बनाती। [570-ई]

दीवानी अपीली अधिकारिता : 1998 की दीवानी अपील सं. 5093

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 1955 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 275 में पारित दिनांक 12.4.1997 के निर्णय एवं आदेश से।

अपीलकर्ताओं की ओर से : के. राममूर्ति, आर. अय्यम पेरुमल, एस. वल्लिनायगम तथा श्रीराम जे. थलापति।

उत्तरदाता की ओर से : आर. सुन्दरवरदन, रमेश एन. केसवानी तथा राम लाल राय।

न्यायालय का निर्णय निम्नलिखित द्वारा प्रदत्त किया गया :-

अरिजीत पसायत, न्यायमूर्ति : मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ ने आक्षेपित निर्णय द्वारा अभिनिर्धारित किया कि उत्तरदाता नंगनल्लूर, सैदारेट तालुक स्थित श्री लक्ष्मी हयवधान पेरुमल मंदिर में वंशानुगत न्यासी के रूप में न्यासित्व का पद धारण करने का

अधिकारी है। हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती आयुक्त तथा उप आयुक्त, जो वर्तमान अपील में अपीलकर्ता हैं, उक्त निर्णय की शुद्धता को चुनौती देते हैं।

वर्तमान अपील के उद्भव का कारण बने पृष्ठभूमिगत तथ्यों का कुछ विस्तार से उल्लेख किया जाना आवश्यक है।

उत्तरदाता-सभा ने तमिलनाडु हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1959 (संक्षेप में, "अधिनियम") की धारा 63(बी) के अधीन उप आयुक्त (वर्तमान अपील में अपीलकर्ता सं. 2) के समक्ष यह घोषणा प्राप्त करने हेतु एक आवेदन दायर किया कि सभा उक्त धार्मिक संस्था की वंशानुगत न्यासी है। उप आयुक्त द्वारा आवेदन खारिज कर दिया गया। आवेदन की अस्वीकृति के विरुद्ध की गई चुनौती को आयुक्त (वर्तमान अपील में अपीलकर्ता सं. 1) द्वारा भी बरकरार रखे जाने के उपरांत, उत्तरदाता ने वादी के रूप में चेंगलपुट के अधीनस्थ न्यायाधीश के समक्ष वैधानिक वाद ओ.एस. सं. 257/1981 दायर किया। वर्तमान अपीलकर्ताओं ने प्रतिवादियों के रूप में यह रुख अपनाया कि प्रश्नगत मंदिर एक सार्वजनिक मंदिर है, जिसका निर्माण सभा के सदस्यों से प्राप्त अंशदानों सहित एकत्रित निधियों तथा सरकार से प्राप्त अनुदानों से किया गया था; कि मंदिर केवल सभा के सदस्यों के लाभ के लिए नहीं, बल्कि व्यापक हिन्दू जनसामान्य के लाभ के लिए है; और इस प्रकार मंदिर अधिनियम की धारा 6(20) के अंतर्गत आने वाला मंदिर है। विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए वादी के दावे को अस्वीकार कर दिया कि वादी प्रश्नगत मंदिर का वंशानुगत न्यासी घोषित किए जाने का अधिकारी नहीं है। साथ ही यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि चूँकि सभा ने मंदिर के निर्माण तथा उपासना करने वाली सामान्य जनता के हित में उसके प्रबंधन हेतु सभी पहल एवं प्रयास किए थे, इसलिए न्यासी बोर्ड में सभा के एक अथवा अधिक प्रतिनिधियों को, जैसा कि प्राधिकारी उपयुक्त समझें, सम्मिलित किया

जाना उचित होगा। उक्त निर्णय से व्यथित होकर वादी ने अपील (ए.एस. सं. 240/1984) दायर की, जिसे भी मद्रास उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा खारिज कर दिया गया। विद्वान न्यायाधीश ने अधिनियम की धारा 6(11) में परिभाषित 'वंशानुगत न्यासी' तथा धारा 6(22) में परिभाषित "न्यासी" के मध्य अंतर्निहित भिन्नता को भी रेखांकित किया। इसके पश्चात् सभा द्वारा 1995 की लेटर्स पेटेंट अपील सं. 275 दायर की गई, जिसे स्वीकृत कर लिया गया और उसी में पारित निर्णय वर्तमान अपील में चुनौती का विषय है। उच्च न्यायालय की खंडपीठ का मत था कि चूँकि सभा मंदिर की संस्थापक थी, इसलिए मंदिर का संपूर्ण प्रशासन सभा में ही निहित है, जो उसके पदाधिकारियों से मिलकर बनी है, और केवल वही मंदिर तथा उसकी संपत्तियों का प्रशासन करने की अधिकारी है।

वादी का संक्षिप्त मामला निम्नवत् है :

सभा का गठन स्वयं सभा के सदस्यों के लाभार्थ एक नवीन मंदिर के निर्माण के उद्देश्य से किया गया था तथा सभा तमिलनाडु सोसाइटीज़ निबंधन अधिनियम, 1975 (संक्षेप में, "सोसाइटीज़ अधिनियम") के अधीन पंजीकृत थी। सभा के उद्देश्य श्री भगवद् रामानुज तथा श्री वेदान्त देसिक द्वारा प्रतिपादित विशिष्टाद्वैत दर्शन के आध्यात्मिक अनुसरण को प्रोत्साहित करना, प्रवचन आयोजित करना तथा व्याख्यानों की व्यवस्था करना, वेदों, उपनिषदों, दिव्यप्रबंधों तथा विशिष्टाद्वैत मत एवं दर्शन से संबंधित स्तोत्रपाठों की कक्षाएँ संचालित करना, विभिन्न धर्मों को मानने वाले व्यक्तियों तथा विभिन्न धर्मों का आचरण करने वाले व्यक्तियों के मध्य सौहार्दपूर्ण संबंध एवं समझ विकसित करने के लिए कार्य करना, सार्वजनिक महत्व के किसी धार्मिक विषय के संबंध में सरकार एवं अन्य प्रमुख धार्मिक संस्थाओं के समक्ष अभ्यावेदन प्रस्तुत करना, सभा के उद्देश्यों से संबंधित सरकार अथवा अन्य निकायों द्वारा गठित समितियों में प्रतिनिधित्व प्राप्त करना, स्वयं के मंदिरों तथा

अन्य पूजा स्थलों, मंडपों आदि का निर्माण एवं अनुरक्षण करना, पत्रिकाओं, जर्नलों तथा अन्य साहित्य का प्रकाशन करना, पुस्तकालयों एवं वाचनालयों की स्थापना एवं अनुरक्षण करना तथा संगोष्ठियों, सामूहिक विचार-विमर्शों एवं सम्मेलनों का आयोजन करना और धर्मार्थ कार्यों के लिए निधियाँ एकत्रित करना आदि थे। सभा के उद्देश्यों में धार्मिक एवं लौकिक, दोनों प्रकार के उद्देश्य सम्मिलित थे, किन्तु उसका मुख्य उद्देश्य अपने सदस्यों द्वारा विशिष्ट उपासना हेतु एक मंदिर का निर्माण करना था। वह भूमि, जिस पर प्रश्नगत संस्था स्थित है, सेंट थॉमस माउंट के पी. एस. श्रीनिवासन द्वारा दान की गई थी। उसका कुल क्षेत्रफल 1-3/4 ग्राउंड था। उक्त पी. एस. श्रीनिवासन सभा के एक सक्रिय सदस्य भी थे। सभा के सदस्यों ने लगभग 2 लाख रुपये एकत्रित किए और प्रश्नगत संस्था का निर्माण कराया। सभा को अपीलकर्ताओं से सरकारी अनुदान के रूप में 25,000 रुपये की राशि भी प्राप्त हुई। निर्माण कार्य वर्ष 1968 में प्रारम्भ हुआ और वर्ष 1972 में पूर्ण हुआ। वर्ष 1972 में सभा के सदस्यों के मध्य से एकत्रित निधियों से कुम्भाभिषेकम् सम्पन्न किया गया। प्रश्नगत संस्था की अपनी कोई संपत्ति नहीं है। संस्था के दैनिक कार्यकलापों का संचालन सभा के सचिव द्वारा किया जाता है, जिसका निर्वाचन समय-समय पर उसके सदस्यों द्वारा किया जाता है। सभा के सदस्य संस्था के अनुरक्षण हेतु उदारतापूर्वक दान दिया करते थे। संस्था को न तो उसके निर्माण हेतु और न ही उसके दैनिक अनुरक्षण हेतु किसी बाहरी व्यक्ति से कोई अंशदान प्राप्त हुआ। यह 120 से अधिक सदस्यों वाली सभा की निजी संपत्ति है। चूँकि संस्था सभा की निजी संपत्ति है, इसलिए सभा को उसके संस्थापक-सह-वंशानुगत न्यासी के रूप में संस्था के कार्यों का प्रबंधन एवं अनुरक्षण करने का पूर्ण अधिकार है। सभा का प्रतिनिधित्व उसके सचिव द्वारा किया जाता है। उत्तरदाता संस्था का वंशानुगत न्यासी है, ऐसी घोषणा प्राप्त करने हेतु अधिनियम की धारा 63(बी) के अधीन अपीलकर्ता सं. 2 के समक्ष एक आवेदन दायर किया गया। उक्त आवेदन 1977 के ओ.ए. संख्या 69 को अपीलकर्ता सं. 2 द्वारा खारिज कर दिया गया। अपीलकर्ता सं. 2 के समक्ष प्रस्तुत परिसाक्ष्य एवं अभिलेख पर रखी गई

सामग्रियों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण एवं विचार करते हुए यह निष्कर्ष निकाला गया कि मंदिर का निर्माण तथा उसके पश्चात उसका अनुरक्षण भी जनता से एकत्रित निधियों द्वारा किया गया है और इसलिए वह उपासना करने वाली हिन्दू जनता के लिए भी अभिप्रेत है। उक्त अस्वीकृति के विरुद्ध उत्तरदाता ने अधिनियम की धारा 69(1) के अधीन अपीलकर्ता सं. 1 के समक्ष 1978 की ए.पी. संख्या 174 दायर की, जिसे भी अपीलकर्ता सं. 1 द्वारा खारिज कर दिया गया। अपीलकर्ताओं द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए, कि उत्तरदाता वंशानुगत न्यासी नहीं हो सकता, जिन आदेशों में निहित तर्कों को अपनाया गया, उन्हें निराधार बताया गया है। यह अभिकथित किया गया कि सभा का समय-समय पर निर्वाचित सचिव प्रश्नगत मंदिर के संबंध में न्यासित्व का पद धारण करने का अधिकारी है। तदनुसार यह दावा किया गया कि उक्त न्यासित्व केवल वंशानुगत प्रकृति का है। इसी कारण यह वाद दायर किया गया।

वाद का प्रतिवाद अपीलकर्ताओं द्वारा प्रतिवादियों के रूप में किया गया। उनके अनुसार, प्रश्नगत मंदिर एक सार्वजनिक मंदिर है, जिसका निर्माण सार्वजनिक अंशदानों से किया गया है, जिसमें उत्तरदाता सभा के सदस्यों के अंशदान भी सम्मिलित हैं, क्योंकि वे भी जनता के सदस्य हैं। उक्त संस्था व्यापक हिन्दू जनता के उद्देश्य हेतु है। सभा के उद्देश्यों पर विचार करना प्रासंगिक नहीं है। प्रश्नगत मंदिर केवल उत्तरदाता के सदस्यों की विशिष्ट उपासना हेतु नहीं है। यह अधिनियम की धारा 6(20) में परिभाषित एक मंदिर है। किसी भी स्थिति में, प्रश्नगत मंदिर जनता के लाभ हेतु जनता को समर्पित किया जा चुका है। जनता इस मंदिर का उपयोग अधिकारस्वरूप करती रही है। भूमि भी पट्टे पर ली गई है। मंदिर के निर्माण हेतु 25,000 रुपये का सरकारी अनुदान भी स्वीकृत किया गया था। मंदिर के निर्माण, कुम्भाभिषेकम् तथा उसके पश्चात् के दैनिक व्ययों के लिए समस्त व्यय सार्वजनिक अंशदानों के साथ-साथ मंदिर में स्थापित हुंडियाल से प्राप्त आय द्वारा वहन किए जाते हैं।

अपीलकर्ताओं के अनुसार, उत्तरदाता का यह कथन कि मंदिर की अपनी कोई संपत्ति नहीं है, सही नहीं है। उत्तरदाता सभा के सदस्यों के अतिरिक्त व्यापक जनता ने भी मंदिर के निर्माण तथा कुम्भाभिषेकम् के पश्चात् दैनिक व्ययों हेतु उदारतापूर्वक अंशदान दिया है। यह सभा के सदस्यों की निजी संपत्ति नहीं है। उत्तरदाता को वंशानुगत न्यासी घोषित किए जाने का कोई अधिकार नहीं है। प्रश्नगत मंदिर में एक हुंडियाल स्थापित है और जनता उसमें उदारतापूर्वक अंशदान करती है। अधिनियम की धारा 63(बी) के अधीन उत्तरदाता द्वारा दायर आवेदन पर अपीलकर्ता सं. 2 द्वारा विधिवत् विचार किया गया तथा उसे उचित रूप से खारिज कर दिया गया, जिसकी पुष्टि अपील में अपीलकर्ता सं. 1 द्वारा भी कर दी गई। दोनों आदेशों में निहित तर्क अपास्त किए जाने योग्य नहीं हैं। उत्तरदाता सभा कभी भी प्रश्नगत मंदिर की वंशानुगत न्यासी नहीं रही है और न ही वह वंशानुगत न्यासित्व धारण कर सकती है। मंदिर एक सार्वजनिक मंदिर है तथा उत्तरदाता के विशिष्ट स्वामित्वाधीन नहीं है। उत्तरदाता सभा के सचिव को उसके वंशानुगत न्यासी के रूप में नियुक्त किए जाने का कोई अधिकार नहीं है तथा न्यासित्व के पद को वंशानुगत पद होने का दावा नहीं किया जा सकता। वाद दायर करने के लिए कोई वादहेतु उत्पन्न नहीं हुआ था और अभिकथित वादहेतु मिथ्या है। उत्तरदाता सभा के उपविधियों में सभा के विघटन का एक उपबंध विद्यमान है, और उपविधियों का उक्त उपबंध स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि न्यासित्व किसी भी प्रकार से वंशानुगत नहीं है। अधिनियम की धारा 6(11) के अधीन 'वंशानुगत न्यासी' को इस प्रकार परिभाषित किया गया है कि धार्मिक संस्था का ऐसा न्यासी, जिसके पद का उत्तराधिकार वंशानुगत अधिकार द्वारा प्राप्त होता हो अथवा जो प्रथा (यूसेज) द्वारा विनियमित हो अथवा जिसका विशेष उपबंध संस्थापक द्वारा किया गया हो, जब तक कि ऐसी उत्तराधिकार योजना प्रभावी हो। वर्तमान वाद में उक्त उपबंध की किसी भी अपेक्षा की पूर्ति नहीं होती है और इसलिए वाद व्यय सहित खारिज किए जाने योग्य था।

विचारण न्यायालय ने निम्नलिखित मुद्दे निर्धारित किए :-

"1. क्या प्रथम प्रतिवादी का आदेश अपास्त किए जाने योग्य है?

2. वादी किस अनुतोष का अधिकारी है?"

विचारण न्यायालय ने यह टिप्पणी करते हुए वाद को खारिज कर दिया कि सभा के सदस्यों द्वारा अंशदान देकर तथा साथ-साथ जनता से दान एकत्रित करके मंदिर के निर्माण हेतु किए गए प्रयासों को ध्यान में रखते हुए, वादी-सभा के सदस्यों में से कम-से-कम एक सदस्य को उक्त मंदिर का न्यासी नियुक्त किया जा सकता है। उक्त मंदिर का न्यासी सभा के किस एक अथवा अधिक सदस्य को नियुक्त किया जाए, इसका निर्णय प्रतिवादियों द्वारा किया जाना है।

विचारण न्यायालय के निर्णय एवं डिक्री से व्यथित होकर वादी (वर्तमान वाद में उत्तरदाता सं. 1) ने उच्च न्यायालय के समक्ष अपील दायर की। विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील खारिज कर दी कि यद्यपि संस्था की स्थापना अपीलकर्ता-सभा द्वारा, जो व्यक्तियों का एक निकाय है, की गई थी, तथापि उसका निर्माण जनता से प्राप्त संग्रहों एवं अंशदानों से भी हुआ था तथा वह समस्त उपासना करने वाली हिन्दू जनता के लिए अभिप्रेत है, और उसे वंशानुगत न्यासी घोषित करने हेतु कोई ग्राह्य आधार उपलब्ध नहीं है।

उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने आक्षेपित निर्णय द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि सभा के मंदिर की संस्थापक होने की स्वीकृत स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए, केवल एकमात्र प्रश्न जिसका उत्तर दिया जाना आवश्यक था, यह था कि क्या व्यक्तियों का कोई निकाय/सोसाइटी अथवा सभा के पदाधिकारी मंदिर के वंशानुगत न्यासी अथवा न्यासी के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकते हैं। उपरोक्त प्रश्न का उत्तर सकारात्मक रूप में दिया गया। इसके लिए इस तथ्य का संदर्भ लिया गया कि मंदिर का संपूर्ण प्रशासन सभा में निहित है तथा सभा के पदाधिकारी एवं सदस्य ही मंदिर एवं उसकी संपत्तियों का प्रशासन करने के अधिकारी हैं, जो उनमें संयुक्त रूप से न्यासियों अथवा सह-न्यासियों के रूप में निहित हैं। वर्तमान अपीलकर्ता सं. 2 के निर्णय, जिसकी पुष्टि वर्तमान अपीलकर्ता सं. 1 द्वारा की गई थी, को अपास्त करते हुए यह घोषित किया गया कि उत्तरदाता-वादी अपने वंशानुगत न्यासी के रूप में न्यासित्व का पद धारण करने का अधिकारी है।

अपील के समर्थन में विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री के. राममूर्ति ने प्रस्तुत किया कि वंशानुगत न्यासी की नियुक्ति को नियंत्रित करने वाले सिद्धांतों को ध्यान में नहीं रखा गया। वंशानुगत न्यासी का पद संपत्ति की प्रकृति का होता है और जहाँ समय के प्रवाह से रिक्ति उत्पन्न होती है, वहाँ उत्तराधिकार नहीं हो सकता तथा वंशानुगतता का सिद्धांत लागू नहीं होगा। वंशानुगत न्यासित्व की सामान्य विशेषता यह है कि उत्तराधिकार वंशानुगत अधिकार द्वारा प्राप्त होता है अथवा जहाँ उत्तराधिकार प्रथा (यूसेज) द्वारा विनियमित होता है अथवा जब तक ऐसी योजना का उपबंध प्रभावी रहता है, तब तक संस्थापक द्वारा उसका विशेष रूप से उपबंध किया गया होता है। यह निर्विवाद स्थिति है कि मंदिर के निर्माण हेतु संस्थापक के अतिरिक्त जनता द्वारा भी अंशदान दिया गया था तथा सरकारी अनुदान भी प्राप्त हुआ था। संस्थापक द्वारा कितना अंशदान दिया गया और जनता द्वारा कितना अंशदान दिया गया, इसका कोई विवरण उपलब्ध न होने के कारण यह अभिनिर्धारित करना अनुमेय नहीं था कि सभा के वंशानुगत न्यासी होने की कोई गुंजाइश थी। यह निष्कर्ष कि मंदिर के निर्माण हेतु

धन एकत्रित किया गया था तथा वह एक सार्वजनिक मंदिर था, अप्रभावित रहा। क्या कोई निगमित निकाय अथवा व्यक्तियों का समूह वंशानुगत न्यासी नियुक्त किया जा सकता है, वर्तमान वाद की तथ्यात्मक पृष्ठभूमि में वास्तव में उसका कोई विशेष महत्व नहीं है। अतः खंड पीठ द्वारा उत्तरदाता के दावे को, जैसा कि प्रार्थित किया गया था, स्वीकृत करना उचित नहीं था।

अधिनियम की धारा 6 की उपधारा (11), जिसमें 'वंशानुगत न्यासी' को परिभाषित किया गया है, के तीन अंग हैं। सोसाइटीज़ अधिनियम की धाराएँ 41 तथा 42 वंशानुगत न्यासित्व के प्रश्न पर अत्यंत प्रासंगिक हैं। उपविधि (23) भी विवाद पर पर्याप्त प्रकाश डालती है। जब मंदिर का निर्माण सर्वप्रथम किया गया हो, तब किसी प्रथा (यूसेज) का अवलंबन करने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। स्वयं सोसाइटी का गठन वर्ष 1967 में हुआ था और इसलिए किसी दीर्घकालिक प्रथा के अस्तित्व में होने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता।

इसके प्रत्युत्तर में उत्तरदाता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि मात्र इस कारण कि जनता से अंशदान प्राप्त हुए थे, अंशदानकर्ताओं को सह-संस्थापक नहीं माना जा सकता। विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा सभा के विघटन के परिणामों पर अनावश्यक बल दिया गया। संस्थापक को सभा के रूप में जाना जाता है तथा प्रबंधन स्वयं सभा के सदस्यों के हाथों में है। इस पहलू के संबंध में कोई विवाद नहीं है। मंदिर के प्रबंधन एवं प्रशासन में जनता द्वारा कोई बाधा अथवा हस्तक्षेप भी नहीं था। निर्माण के समय से निरंतर चले आ रहे प्रबंधन की अवधि स्वयं दीर्घकालिक प्रथा (यूसेज) का संकेत देती है। न्यासित्व प्रबंधन से संबद्ध है और किसी निकाय के न्यासी बनने पर कोई विधिक निषेध न होने के कारण, खंड पीठ द्वारा यह अभिनिर्धारित करना सही था कि सभा एक वंशानुगत न्यासी है। यदि अधिनियम की धारा 6 के खंड (22) को देखा जाए, तो समग्र रूप से सभा एक न्यासी है और धारा 6 के खंड (11)

के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि सभा एक वंशानुगत न्यासी है। संस्थापकों में स्वयमेव न्यासित्व निहित हो गया था। किसी का भी यह मामला नहीं है कि वह एक निर्वाचित निकाय था, और इसलिए अंशदानकर्ताओं तथा सरकार को उसके संस्थापकों का दर्जा प्राप्त नहीं माना जा सकता। सभा कोई निगमित निकाय नहीं है, बल्कि नामों का एक समूह है। उत्तरदाता का यह मामला नहीं है कि कोई विशिष्ट सदस्य न्यासी था। उक्त समूह ही न्यासी था, जो अपने सचिव के माध्यम से कार्य कर रहा था और इसलिए खंड पीठ ने सही रूप से अभिनिर्धारित किया कि वर्तमान उत्तरदाता सं. 1 एक वंशानुगत न्यासी था।

अधिनियम की धारा 6, जो वर्तमान विवाद में केंद्रीय उपबंध है, जहाँ तक प्रासंगिक है, निम्नवत् है :-

"धारा 6(11) - 'वंशानुगत न्यासी' से तात्पर्य धार्मिक संस्था के ऐसे न्यासी से है, जिसके पद का उत्तराधिकार वंशानुगत अधिकार द्वारा प्राप्त होता है अथवा प्रथा (यूसेज) द्वारा विनियमित होता है अथवा जिसका विशेष रूप से उपबंध संस्थापक द्वारा किया गया हो, जब तक कि ऐसी उत्तराधिकार योजना प्रभावी हो।

6(20) - 'मंदिर' से तात्पर्य ऐसे स्थान से है, जिसे किसी भी नाम से जाना जाता हो और जिसका उपयोग सार्वजनिक धार्मिक उपासना के स्थान के रूप में किया जाता हो तथा जो हिन्दू समुदाय अथवा उसके किसी वर्ग को सार्वजनिक धार्मिक उपासना के स्थान के रूप में समर्पित हो, अथवा उसके लाभ के लिए हो, अथवा जिसका उपयोग उनके द्वारा अधिकारस्वरूप किया जाता हो।"

6(22) "न्यासी" से तात्पर्य ऐसे किसी व्यक्ति अथवा निकाय से है, जिसे किसी भी नाम से जाना जाता हो, जिसमें किसी धार्मिक संस्था का प्रशासन निहित हो, और

इसमें ऐसा कोई व्यक्ति अथवा निकाय भी सम्मिलित है, जो ऐसे उत्तरदायित्व के अधीन हो मानो वह व्यक्ति अथवा निकाय न्यासी हो।"

प्रतिस्पर्धी निवेदनों पर विचार करने के उपरांत, हमारा मत है कि उच्च न्यायालय की खंड पीठ का दृष्टिकोण त्रुटिपूर्ण आधारों पर आधारित था और ऐसा प्रतीत होता है कि निष्कर्ष कुछ महत्वपूर्ण एवं मूलभूत अंतर्निहित कारकों, मंदिर के स्वरूप तथा उस पर अधिनियम के उपबंधों के प्रवर्तन एवं प्रभाव तथा उनसे संबंधित किए गए दावों की उपेक्षा करते हुए निकाले गए हैं। मूल प्रश्न यह नहीं था कि व्यक्तियों का कोई निकाय अथवा सोसाइटी अथवा सभा के पदाधिकारी मंदिर के वंशानुगत न्यासी अथवा न्यासी के रूप में मान्यता प्राप्त कर सकते हैं या नहीं। जिस प्रश्न का अभिनिर्धारण अपेक्षित था, वह यह था कि क्या तथ्यों तथा प्रचलित एवं शासक विधिक स्थिति, विशेषकर प्रश्नगत अधिनियम, के आलोक में 'वंशानुगत न्यासी' का दावा स्थापित किया गया था अथवा उसे बरकरार रखा जा सकता था।

'वंशानुगत न्यासी' की परिभाषा का साधारण अवलोकन तीन महत्वपूर्ण पहलुओं को स्पष्ट करता है, अर्थात् प्रथम, धार्मिक संस्था का ऐसा न्यासी जिसके पद का उत्तराधिकार वंशानुगत अधिकार द्वारा प्राप्त होता हो; द्वितीय श्रेणी वह है जहाँ उत्तराधिकार प्रथा (यूसेज) द्वारा विनियमित होता हो; तथा तृतीय श्रेणी वह है जहाँ न्यासी के पद से संबंधित उत्तराधिकार का विशेष उपबंध संस्थापक द्वारा किया गया हो और वह भी तब तक, जब तक ऐसी उत्तराधिकार योजना प्रभावी हो। धारा 6(22) में अंतर्निहित मानदंडों के विपरीत, धारा 6(11) की परिभाषा धार्मिक संस्था के न्यासी के पद के उत्तराधिकार पर विशेष तथा स्पष्ट बल देती है, जो उसमें परिकल्पित तीन विधियों अथवा तरीकों में से किसी एक द्वारा प्राप्त होता हो। जहाँ तक वर्तमान वाद का संबंध है, अधिनियम के अधीन विशेष रूप से गठित वैधानिक प्राधिकारियों ने यह अभिनिर्धारित किया है कि निधियों के संग्रह की पद्धति, सार्वजनिक

आमंत्रणों एवं घोषणाओं के स्वरूप तथा मंदिर के प्रारम्भ से किए जा रहे दैनिक प्रशासन को ध्यान में रखते हुए, यह मंदिर केवल सभा के सदस्यों तक सीमित न होकर समस्त उपासना करने वाली हिन्दू जनता के लिए है। यद्यपि धार्मिक संस्था के न्यासी के पद को वंशानुगत घोषित किए जाने हेतु आवेदन दायर किया गया था, तथापि अधिनियम की धारा 63(ए) के अधीन इस आशय की घोषणा हेतु कोई आवेदन दायर नहीं किया गया कि क्या प्रश्नगत मंदिर ऐसी धार्मिक संस्था है जिसका उपयोग सार्वजनिक धार्मिक उपासना के स्थान के रूप में किया जाता है तथा जो हिन्दू समुदाय अथवा उसके किसी वर्ग को समर्पित है, अथवा उसके लाभ के लिए है, अथवा जिसका उपयोग उनके द्वारा अधिकारस्वरूप किया जाता है। संस्था के स्वरूप के संबंध में वैधानिक प्राधिकारियों द्वारा विशिष्ट निष्कर्ष दिए जाने के पश्चात भी, इस संबंध में स्पष्ट चूक ने उत्तरदाता-सभा को यह आनुषंगिक अथवा अस्पष्ट दावा करने से वंचित कर दिया कि मंदिर केवल सभा के सदस्यों के लिए है। एक बार जब यह अधिनियम के अर्थ में धार्मिक संस्था है, तब अधिनियम के उपबंध पूर्णतः प्रभावी एवं प्रवर्तनीय हो जाते हैं और ऐसी प्रकृति के दावे को, जब तक कि उसे अधिनियम में उपबंधित विधि के अनुसार प्रमाणित न किया जाए, मात्र ऐसे कथनों के आधार पर स्वीकार नहीं किया जा सकता जो उक्त वैधानिक उपबंधों से परे हों। इस न्यायालय ने इस पहलू पर *डॉ. श्रीनिवासन बनाम आयुक्त एवं अन्य,* जो [2000] 3 एस.सी.सी. 548 में प्रतिवेदित है, में विशेष रूप से प्रकाश डाला था।

अधिनियम सभी हिन्दू सार्वजनिक धार्मिक संस्थाओं तथा बंदोबस्तों पर लागू होता है। प्रासंगिक समय पर परिभाषित 'धार्मिक संस्था' से आशय मठ, मंदिर अथवा विशिष्ट बंदोबस्त से था तथा 'मंदिर' से आशय ऐसे स्थान से था, जिसे किसी भी नाम से जाना जाता हो और जिसका उपयोग सार्वजनिक धार्मिक उपासना के स्थान के रूप में किया जाता हो तथा जो हिन्दू समुदाय अथवा उसके किसी वर्ग को सार्वजनिक धार्मिक उपासना के स्थान के रूप में समर्पित हो, अथवा उसके लाभ के लिए हो, अथवा जिसका उपयोग उनके द्वारा

अधिकारस्वरूप किया जाता हो। 'न्यासी' से आशय ऐसे किसी व्यक्ति अथवा निकाय से था, जिसे किसी भी नाम से जाना जाता हो और जिसमें किसी धार्मिक संस्था का प्रशासन निहित हो तथा इसमें ऐसा कोई व्यक्ति अथवा निकाय भी सम्मिलित है, जो ऐसे उत्तरदायित्व के अधीन हो मानो वह व्यक्ति अथवा निकाय न्यासी हो। ऐसी धार्मिक संस्था के संबंध में, जिसका कोई वंशानुगत न्यासी नहीं है, संबंधित सक्षम प्राधिकारी को, मंदिर की श्रेणी के आधार पर, अधिनियम के उपबंधों के अधीन न्यासी बोर्ड गठित करने का भी अधिकार प्रदान किया गया है। 'वंशानुगत न्यासी' को ऐसे न्यासी के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसके पद का उत्तराधिकार वंशानुगत अधिकार द्वारा प्राप्त होता हो अथवा प्रथा (यूसेज) द्वारा विनियमित होता हो अथवा जिसका विशेष रूप से उपबंध संस्थापक द्वारा किया गया हो, जब तक कि ऐसी उत्तराधिकार योजना प्रभावी हो। 'अवंशानुगत न्यासी' को भी ऐसे न्यासी के रूप में परिभाषित किया गया है, जो वंशानुगत न्यासी नहीं है। परिणामस्वरूप, न्यासी का पद, चाहे वह वंशानुगत हो अथवा अवंशानुगत, यद्यपि किसी विशिष्ट समय पर अथवा किसी निश्चित अवधि के लिए ऐसा पदधारी रख सकता है जो न्यासित्व का पद धारण करता हो, तथापि उसके स्वरूप एवं चरित्र के निर्धारण के लिए निर्णायक तत्व केवल वह रीति अथवा विधि है जिसके द्वारा संबंधित पदधारी उस पद पर आसीन होता है। उसी के आधार पर यह निर्धारित किया जाता है कि उक्त पद वंशानुगत है अथवा अवंशानुगत।

1959 के अधिनियम से पूर्व, मद्रास हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती अधिनियम, 1951 इस क्षेत्र को 01.10.1951 से नियंत्रित कर रहा था और बाद में उसके स्थान पर 1959 का अधिनियम लागू हुआ। 1951 के अधिनियम के अधीन प्रयुक्त शब्दावली 'वंशानुगत न्यासी' के अर्थ एवं परिधि पर मद्रास उच्च न्यायालय तथा इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया था। *मद्रास राज्य बनाम रामकृष्ण नायडू,* जो ए.आई.आर. 1957 मद्रास 758 = आई.एल.आर. 1957 मद्रास 1084 में प्रतिवेदित है , में मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंड

पीठ को मद्रास नगर के त्रिप्लिकेन स्थित प्राचीन मंदिर, श्री पार्थसारथी स्वामी मंदिर, के संदर्भ में इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार करने का अवसर प्राप्त हुआ था। संबंधित समय पर मंदिर का प्रशासन मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा निर्मित एक योजना के अनुसार संचालित किया जा रहा था, जिसमें अन्य बातों के साथ यह उपबंध था कि मंदिर का प्रबंधन एवं कार्यकलाप एक पर्यवेक्षण बोर्ड के अधीक्षण एवं नियंत्रण के अधीन धर्मकर्त्ताओं के एक निकाय द्वारा संचालित किए जाएंगे। धर्मकर्त्ता तीन होंगे, जिनमें एक ब्राह्मण, एक आर्य वैश्य (कोमट्टी) तथा एक गैर-ब्राह्मण, जो आर्य वैश्य न हो, होगा। धर्मकर्त्ता अपनी नियुक्ति की तिथि से पाँच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेंगे तथा सेवानिवृत्त धर्मकर्त्ता, यदि अन्यथा योग्य हों, तो पुनर्नियुक्ति हेतु भी पात्र होंगे। उक्त धर्मकर्त्ताओं का निर्वाचन उन व्यक्तियों द्वारा किया जाना था, जिनके नाम निर्वाचन की तिथि पर मंदिर में संधारित मतदाता सूची में सम्मिलित हों। मतदाता के रूप में पंजीकरण हेतु अर्हताएँ निर्धारित थीं तथा निर्वाचन संचालन के लिए विस्तृत नियम भी उक्त योजना में उपबंधित किए गए थे। 1951 के अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात्, *राव बहादुर बनाम रंगनाथन चेट्टी* नामक धर्मकर्त्ता का कार्यकाल समयावधि की समाप्ति से समाप्त हो गया। यद्यपि योजना के अनुसार उत्पन्न रिक्ति निर्वाचन द्वारा भरी जानी थी, तथापि हिन्दू धार्मिक तथा धर्मार्थ बंदोबस्ती आयुक्त ने 1951 के अधिनियम की धारा 39(1) के अधीन अपनी शक्तियों का प्रयोग करते हुए श्री सी. सुब्रमणियम चेट्टी को, श्री वी. रंगनाथन चेट्टी के न्यासी पद की अवधि समाप्त होने से उत्पन्न रिक्ति में, न्यासी नियुक्त कर दिया। इस आदेश को उच्च न्यायालय में चुनौती दी गई और विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करते हुए चुनौती को स्वीकार कर लिया कि धाराएँ 39 तथा 42 लागू नहीं होतीं, क्योंकि मंदिर के न्यासी वंशानुगत न्यासी थे। नियुक्ति को चुनौती देने वाले न तो निवर्तमान न्यासी श्री वी. रंगनाथन चेट्टी थे और न ही उनके उत्तराधिकारी अथवा वारिस, बल्कि उक्त मंदिर में रुचि रखने वाले दो थेंगलई उपासक थे। यदि मंदिर के न्यासी वंशानुगत न्यासी थे, तो धाराएँ 39 तथा 42 लागू नहीं होतीं। इसी

संदर्भ में विचारार्थ यह प्रश्न उठा कि क्या यह ऐसी संस्था थी जिसके पास वंशानुगत न्यासी अथवा वंशानुगत न्यासीगण थे। 1951 के अधिनियम की धारा 6(9) में निहित 'वंशानुगत न्यासी' की परिभाषा का उल्लेख करने के पश्चात्, जिसमें इसे धार्मिक संस्था के ऐसे न्यासी के रूप में परिभाषित किया गया था जिसके पद का उत्तराधिकार वंशानुगत अधिकार द्वारा प्राप्त होता हो अथवा प्रथा (यूसेज) द्वारा विनियमित होता हो अथवा जिसका विशेष उपबंध संस्थापक द्वारा किया गया हो, जब तक कि ऐसी उत्तराधिकार योजना प्रभावी हो, खंड पीठ ने विशेष रूप से इस तथ्य का संज्ञान लिया कि आयुक्त के आदेश को चुनौती देने वालों का दावा इस आधार पर था कि धर्मकर्त्ताओं का पद 'वंशानुगत' था। यह दावा इस आधार पर नहीं था कि उनके पद का उत्तराधिकार परंपरागत उत्तराधिकार द्वारा प्राप्त होता था अथवा उनके पद के उत्तराधिकार का विशेष उपबंध संस्थापक द्वारा किया गया था, बल्कि इस आधार पर था कि पद का उत्तराधिकार 'प्रथा (यूसेज) द्वारा विनियमित' था। इस तर्क को विद्वान एकल न्यायाधीश ने स्वीकार कर लिया था। राज्य की ओर से खंड पीठ के समक्ष यह रुख अपनाया गया कि 'प्रथा द्वारा विनियमित' वाक्यांश को "जिसके पद का उत्तराधिकार" शब्दों के साथ पढ़ा जाना चाहिए और ऐसा पढ़े जाने पर परिभाषा का वह भाग केवल उन्हीं मामलों पर लागू होगा जहाँ हिन्दू विधि के सामान्य उत्तराधिकार नियमों में प्रथा द्वारा संशोधन किया गया हो तथा उत्तराधिकार का निर्धारण उन संशोधित नियमों के अनुसार किया जाना हो। यह अवलोकित किया गया कि यद्यपि न्यायालय द्वारा निर्मित अनेक योजनाओं में प्रथा का संज्ञान लिया गया था तथा न्यायालय द्वारा उपयुक्त समझे गए संशोधनों सहित उसे योजना में समाहित किया गया था, तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि उत्तराधिकार का नियमन अब भी प्रथा द्वारा किया जा रहा था, जबकि वास्तविक स्थिति यह थी कि उसका नियमन योजना के उपबंधों द्वारा किया जा रहा था, न कि अब प्रथा द्वारा।

इसके पश्चात्, खंड पीठ ने 'वंशानुगत न्यासी' की परिभाषा के क्षेत्र एवं आशय की व्याख्या करते हुए *अंगूरबाला मुल्लिक बनाम देबब्रत मुल्लिक*, जो 1951 एस.सी.आर. 1125

में प्रतिवेदित है तथा *सीतल दास बनाम संत राम,* जो ए.आई.आर. 1954 एससी 606 में प्रतिवेदित है , में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णयों पर अत्यधिक अवलंबन किया और निम्नवत् अभिनिर्धारित किया :-

> "मठों के मामलों में, जिनके प्रमुख प्रायः ब्रह्मचारी तथा कभी-कभी संन्यासी होते हैं, उत्तराधिकार के विशेष नियम प्रथा एवं परंपरा द्वारा संचालित होते हैं। *सीतल दास बनाम संत राम* में यह विधि सुस्थापित मानी गई है कि किसी मठ अथवा धार्मिक संस्था के महंत पद के उत्तराधिकार का नियमन उस विशिष्ट संस्था की प्रथा अथवा परंपरा द्वारा होता है, सिवाय उस स्थिति के जब संस्थापक, जिसने बंदोबस्त की स्थापना की हो, स्वयं उत्तराधिकार का नियम निर्धारित कर दे। उस वाद में महंत पद के उत्तराधिकार से संबंधित प्रथा यह थी कि बैरागियों तथा मंदिर के उपासकों की सभा उत्तराधिकारी की नियुक्ति करती थी; किन्तु नियुक्ति मृत महंत के शिष्यों में से की जानी थी, यदि कोई शिष्य उपलब्ध हो, और शिष्यों के अभाव में उसके किसी आध्यात्मिक संबंधी में से की जानी थी। ऐसे उत्तराधिकार को इस अर्थ में वंशानुगत नहीं कहा गया कि विद्यमान महंत की मृत्यु पर उसका चेला स्वयमेव पद का उत्तराधिकारी बन जाता है, क्योंकि उत्तराधिकारी केवल नियुक्ति के माध्यम से अधिकार प्राप्त करता है तथा नियुक्ति का अधिकार बैरागियों एवं उपासकों की सभा में निहित होता है। श्री महंत परमानंद दास गोस्वामी बनाम राधाकृष्ण दास में एक खंड पीठ ने यह मत व्यक्त किया था कि जहाँ महंत पद का उत्तराधिकार पदधारी द्वारा नामांकन के माध्यम से होता है, वहाँ वह वंशानुगत उत्तराधिकार नहीं माना जाएगा। वेंकटसुब्बा राव, न्यायाधीश ने कहा था :-

'यदि उत्तराधिकारी अपना अधिकार नामांकन अथवा नियुक्ति से प्राप्त करता है, अर्थात् उसका उत्तराधिकार अंतिम पदधारी की इच्छा पर निर्भर करता है और किसी स्वतंत्र अधिकार पर आधारित नहीं है, तो मेरा मत है कि उस पद को वंशानुगत नहीं कहा जा सकता।'"

कृष्णन, न्यायाधीश, जो अन्य विद्वान न्यायाधीश थे, निम्नलिखित तर्क के आधार पर इसी निष्कर्ष पर पहुँचे :-

"जहाँ पदधारी अपने उत्तराधिकारी का नामांकन करता है, वहाँ यह प्रतिपादित करना असंभव प्रतीत होता है कि ऐसा उत्तराधिकार वंशानुगत उत्तराधिकार है। वंशानुगत उत्तराधिकार वह उत्तराधिकार है जिसमें मृत व्यक्ति का उत्तराधिकारी विधि के अनुसार उसका वारिस होता है। पद का हस्तांतरण उत्तराधिकारी को वंशानुक्रम के ऐसे निश्चित नियमों के अनुसार होना चाहिए, जो स्वयं अपने बल पर उत्तराधिकारी व्यक्ति को निर्दिष्ट करते हों। मृत व्यक्ति और उसके उत्तराधिकारी के मध्य रक्त-संबंध होना आवश्यक नहीं है, किन्तु उत्तराधिकारी का अधिकार किसी व्यक्ति-विशेष के चयन पर निर्भर नहीं होना चाहिए।"

यद्यपि, धारा 6 के खंड (9) में निहित वर्तमान परिभाषा ऐसे मामलों को भी अपने अंतर्गत सम्मिलित कर लेगी।

हमारे मत में यह कहना अत्यंत अनुपयुक्त प्रतीत होता है कि 'ए' के पद का उत्तराधिकार किसी अन्य को प्राप्त हुआ, जबकि 'ए' की नियुक्ति की अवधि समाप्त हो जाने पर पद रिक्त हो जाता है और उस रिक्ति पर 'बी' का निर्वाचन किया जाता है।"

सम्बुदमूर्ति मुदलियार बनाम मद्रास राज्य एवं एक अन्य, जो ए.आई.आर. 1971 एससी 2363 = [1970] 1 एस.सी.सी. 4 में प्रतिवेदित है, में इस न्यायालय को धारा 6(9) तथा 'वंशानुगत न्यासी' शब्दावली के क्षेत्र एवं आशय की व्याख्या करने का अवसर प्राप्त हुआ था और न्यायालय ने निम्नवत् अभिनिर्धारित किया :-

> "3. इस अपील में विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या अपीलकर्ता उक्त धारा के अर्थ में वंशानुगत न्यासी है। परिभाषा तीन प्रकार की स्थितियों को सम्मिलित करती है : (1) न्यासी पद का उत्तराधिकार, जो वंशानुगत अधिकार द्वारा प्राप्त होता है; (2) ऐसे पद का उत्तराधिकार, जो प्रथा (यूसेज) द्वारा विनियमित होता है; तथा (3) ऐसा उत्तराधिकार, जिसका विशेष उपबंध संस्थापक द्वारा किया गया हो, इस शर्त के अधीन कि ऐसी उत्तराधिकार योजना अभी भी प्रभावी हो। अपीलकर्ता का यह मामला नहीं है कि कुमारन कोइल मंदिर के न्यासी वंशानुगत न्यासी हैं क्योंकि उनका पद वंशानुगत अधिकार द्वारा प्राप्त होता है अथवा क्योंकि उस पद के उत्तराधिकार का विशेष उपबंध संस्थापक द्वारा किया गया है। अपीलकर्ता की ओर से यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि उत्तराधिकार 'प्रथा (यूसेज) द्वारा विनियमित' है। यह कहा गया कि मंदिर की प्रथा के अनुसार सेंगुनाथ मुदलियार समुदाय के सदस्यों की बैठक में प्रत्येक वर्ष के लिए न्यासियों का निर्वाचन किया जाता था और इसलिए अपीलकर्ता को 1951 के अधिनियम 19 की धारा 6(9) के अर्थ में न्यासी माना जाना चाहिए। हमारे मत में इस तर्क के समर्थन में कोई औचित्य नहीं है। अधिनियम की धारा 6(9) में प्रयुक्त वाक्यांश 'प्रथा द्वारा विनियमित' का अर्थ 'उस पद का उत्तराधिकार' वाक्यांश के साथ मिलाकर किया जाना चाहिए और ऐसा करने पर परिभाषा का यह भाग केवल उन मामलों पर लागू होगा जहाँ हिन्दू

विधि के अंतर्गत उत्तराधिकार के सामान्य नियम प्रथा द्वारा परिवर्तित किए गए हों तथा उत्तराधिकार का निर्धारण उन परिवर्तित नियमों के अनुसार किया जाना हो। संपत्ति तथा संपत्ति में अधिकारों एवं हितों के संदर्भ में 'उत्तराधिकार' शब्द का सामान्यतः अर्थ है 'एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को हित का हस्तांतरण' (देखिए, : हिन्दू महिला संपत्ति अधिकार अधिनियम, 1937, (1941) एफ.सी.आर. 12 = ए.आई.आर. 1941 एफसी 72 में)। अब यह सुस्थापित है कि वंशानुगत न्यासी का पद संपत्ति की प्रकृति का होता है। यह स्थिति तब भी है जब न्यासी का उसमें कोई लाभकारी हित हो अथवा न हो। (देखिए, *गणेश चन्द्र धुर बनाम लाल बिहारी,* 63 इंडियन अपील 448 = ए.आई.आर. 1936 पीसी 318 तथा *भबततिनी बनाम आशालता,* 70 इंडियन अपील 57 = ए.आई.आर. 1943 पीसी 89)। सामान्यतः शेबैत का पद अथवा धर्मकर्त्ता का पद संस्थापक के उत्तराधिकारियों में निहित होता है, जब तक कि संस्थापक ने उत्तराधिकार की कोई विशेष योजना निर्धारित न की हो अथवा इसके विपरीत कोई प्रथा या परंपरा विद्यमान होना सिद्ध न कर दिया गया हो। *अंगूरबाला मुल्लिक बनाम देबब्रत मुल्लिक,* जो [1951] एस.सी.आर. 1125 = ए.आई.आर. 1951 एससी 293 में प्रतिवेदित है, में इस न्यायालय का निर्णय प्रदान करते हुए न्यायमूर्ति मुखर्जी ने अवलोकित किया :—"

> "अतः, जब तक कि संस्थापक ने शेबैत पद के संबंध में किसी विशिष्ट प्रकार से व्यवस्था न की हो — और ऐसी व्यवस्था करने का अधिकार संस्थापक में अंतर्निहित होता है — अथवा जब तक इसके विपरीत किसी भिन्न प्रकृति की प्रथा या परंपरा का अस्तित्व सिद्ध न कर दिया जाए, तब तक शेबैत पद, अन्य किसी वंशानुगत संपत्ति की भाँति, संस्थापक से उत्तराधिकार की श्रृंखला का अनुसरण करता है।"

मठों के मामलों में, जिनके प्रमुख प्रायः ब्रह्मचारी तथा कभी-कभी संन्यासी होते हैं, उत्तराधिकार के विशेष नियम प्रथा एवं परंपरा द्वारा संचालित होते हैं। *सीतल दास बनाम संत राम,* जो ए.आई.आर. 1954 एससी 606 में प्रतिवेदित है, में यह विधि सुस्थापित मानी गई कि किसी मठ अथवा धार्मिक संस्था के महंत पद के उत्तराधिकार का नियमन उस विशिष्ट संस्था की प्रथा अथवा परंपरा द्वारा होता है, सिवाय उस स्थिति के जब संस्थापक, जिसने बंदोबस्त की स्थापना की हो, स्वयं उत्तराधिकार का नियम निर्धारित कर दे। उस वाद में महंत पद के उत्तराधिकार से संबंधित प्रथा यह थी कि बैरागियों तथा मंदिर के उपासकों की सभा उत्तराधिकारी की नियुक्ति करती थी; किन्तु नियुक्ति मृत महंत के शिष्यों में से की जानी थी, यदि कोई शिष्य उपलब्ध हो, और शिष्यों के अभाव में उसके किसी आध्यात्मिक संबंधी में से की जानी थी। ऐसे उत्तराधिकार को इस अर्थ में वंशानुगत नहीं कहा गया कि विद्यमान महंत की मृत्यु पर उसका चेला स्वयमेव पद का उत्तराधिकारी बन जाता है, क्योंकि उत्तराधिकारी केवल नियुक्ति के माध्यम से अधिकार प्राप्त करता है तथा नियुक्ति का अधिकार बैरागियों एवं उपासकों की सभा में निहित होता है। *श्री महंत परमानंद दास गोस्वामी बनाम राधाकृष्ण दास,* जो 51 एम.एल.जे. 258 = ए.आई.आर. 1926 मद्रास 1012 में प्रतिवेदित है, में मद्रास उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि जहाँ महंत पद का उत्तराधिकार पदधारी द्वारा नामांकन के माध्यम से होता है, वहाँ वह वंशानुगत उत्तराधिकार नहीं माना जाएगा। उस वाद में वेंकटसुब्बा राव, न्यायाधीश ने कहा था :-

> "यदि उत्तराधिकारी अपना अधिकार नामांकन अथवा नियुक्ति से प्राप्त करता है, अर्थात् उसका उत्तराधिकार अंतिम पदधारी की इच्छा पर निर्भर करता है और किसी स्वतंत्र अधिकार पर आधारित नहीं है, तो मेरा मत है कि उस पद को वंशानुगत नहीं कहा जा सकता।"

कृष्णन, न्यायाधीश ने निम्नवत् कहा :-

> “जहाँ पदधारी अपने उत्तराधिकारी का नामांकन करता है, वहाँ यह प्रतिपादित करना असंभव प्रतीत होता है कि ऐसा उत्तराधिकार वंशानुगत उत्तराधिकार है। वंशानुगत उत्तराधिकार वह उत्तराधिकार है जिसमें मृत व्यक्ति का उत्तराधिकारी विधि के अनुसार उसका वारिस होता है। पद का हस्तांतरण उत्तराधिकारी को वंशानुक्रम के ऐसे निश्चित नियमों के अनुसार होना चाहिए, जो स्वयं अपने बल पर उत्तराधिकारी व्यक्ति को निर्दिष्ट करते हों। मृत व्यक्ति और उसके उत्तराधिकारी के मध्य रक्त-संबंध होना आवश्यक नहीं है, किन्तु उत्तराधिकारी का अधिकार किसी व्यक्ति-विशेष के चयन पर निर्भर नहीं होना चाहिए।”

यह सत्य है कि अधिनियम की धारा 6(9) में निहित वंशानुगत न्यासी की कृत्रिम परिभाषा ऐसे मामलों को भी अपने अंतर्गत सम्मिलित कर सकती है।

4. किन्तु वर्तमान वाद में न्यासी के पद हेतु निर्वाचन एक वर्ष की निश्चित अवधि के लिए होता है, आजीवन नहीं। अतः यह अभिनिर्धारित करना कठिन है कि अपीलकर्ता का पद अधिनियम की धारा 6(9) के अर्थ में वंशानुगत है। यह कहना संभव नहीं है कि ‘ए’ के पद का उत्तराधिकार किसी अन्य को प्राप्त हुआ, जबकि ‘ए’ की नियुक्ति की अवधि समाप्त होने पर एक रिक्ति उत्पन्न होती है और उस रिक्ति पर ‘बी’ निर्वाचित होता है। यह भी पूर्णतः संभव है कि उसी रिक्ति के लिए ‘ए’ स्वयं पुनः निर्वाचित हो जाए, क्योंकि सेवानिवृत्त न्यासी पुनर्निर्वाचन हेतु पात्र होता है। ‘ए’ का स्वयं अपने ही उत्तराधिकारी होने की संभावना मात्र एक विसंगति नहीं है, बल्कि विधिक दृष्टि से एक असंभव स्थिति है। कोई व्यक्ति स्वयं अपने

पद का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता। ब्लैक्स विधिक शब्दकोश में "उत्तराधिकार " शब्द को निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है :-

"वंशानुक्रम तथा वितरण संबंधी विधि के अधीन संपत्ति के स्वत्व का अंतरण।

वह अधिकार जिसके द्वारा व्यक्तियों का एक समूह, दूसरे समूह का स्थान ग्रहण करके, किसी निगम की समस्त वस्तुओं, चल संपत्तियों तथा अन्य चल-अचल वस्तुओं में संपत्ति का अधिकार प्राप्त कर सकता है।

मृत व्यक्ति के अधिकारों, संपदाओं, दायित्वों तथा भारों का उसके वारिस अथवा वारिसों को हस्तांतरण होने का तथ्य।"

मद्रास राज्य बनाम रामकृष्ण नायडू, जो आई.एल.आर. 1957 मद्रास 1084 = ए.आई.आर. 1957 मद्रास 758 में प्रतिवेदित है, में मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा दिए गए तर्क हमारे द्वारा ग्रहण किए गए दृष्टिकोण की पुष्टि करते हैं।"

इस प्रकार, यह देखा जा सकता है कि *सम्बुदमूर्ति मुदलियार* के वाद (उपरोक्त) में भी चुनौती ऐसे व्यक्ति द्वारा दी गई थी जिसकी नियुक्ति केवल एक वर्ष के लिए हुई थी, आजीवन नहीं और न्यायालय के समक्ष उसके द्वारा विचारार्थ प्रस्तुत दावा यह नहीं था कि वह स्वयं एक वंशानुगत न्यासी था, बल्कि यह था कि मंदिर का न्यासित्व अपने स्वरूप में "वंशानुगत" था। इस न्यायालय ने *रामकृष्ण नायडू* के वाद (उपरोक्त) में मद्रास उच्च न्यायालय की खंड पीठ के निर्णय के आधार को भी अनुमोदित किया। परिणामस्वरूप, मद्रास उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ द्वारा *ए.एन. रामास्वामी अय्यर एवं अन्य बनाम आयुक्त, एच.आर. एवं सी.ई. एवं एक अन्य,* जो (1975) 2 एम.एल.जे. 178 में प्रतिवेदित है,

विशेषकर उसकी कंडिका 11 में, इस न्यायालय के निर्णय से भेद स्थापित करने का जो प्रयास किया गया, वह किसी भी सार से रहित है और वास्तव में ऐसा भेद स्थापित करने योग्य कोई वास्तविक अंतर भी नहीं है। उक्त निर्णय को विधि का सही प्रतिपादन करने वाला निर्णय नहीं माना जा सकता, क्योंकि यह *सम्बुदमूर्ति मुदलियार* के वाद (उपरोक्त) में इस न्यायालय द्वारा विधिक स्थिति के संबंध में की गई स्पष्ट घोषणा के प्रतिकूल है। जब तक किसी संस्थापक द्वारा न्यासित्व के पद के उत्तराधिकार को, उसमें परिकल्पित किसी विधि अथवा तरीके से, वंशानुगत रूप में प्राप्त होने के लिए कोई उपबंध नहीं किया गया हो, तब तक यह दावा करना निरर्थक है कि मंदिर का कोई वंशानुगत न्यासी है अथवा मंदिर के कार्यों का प्रबंधन एवं प्रशासन किसी वंशानुगत न्यासी द्वारा संचालित किया जा रहा है अथवा उत्तरदाता इस घोषणा का अधिकारी है कि वह प्रश्नगत मंदिर का वंशानुगत न्यासी है। वर्तमान वाद में ऐसा कोई उपबंध न तो प्रदर्शित किया गया है और न ही उसके अस्तित्व का कोई निष्कर्ष निकाला गया है। वस्तुतः, उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह पाया कि ऐसा कोई उपबंध स्पष्ट रूप से अनुपस्थित था।

डॉ. श्रीनिवासन के वाद (उपरोक्त) में इस न्यायालय ने मद्रास हिन्दू धार्मिक बंदोबस्ती अधिनियम, 1926 (1927 का अधिनियम 2) की धारा 9(6), 1951 के अधिनियम की धारा 6(9) तथा 1959 के अधिनियम की धारा 6(11) में निहित 'वंशानुगत न्यासी' की परिभाषा पर विचार किया था। 1951 तथा 1959 के अधिनियमों द्वारा क्रमशः किए गए परिवर्तनों का संज्ञान लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया कि 1951 के अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात् ही धारा 6(9) में निहित 'वंशानुगत न्यासी' की परिभाषा ऐसे व्यक्ति को मान्यता नहीं देती थी जिसे अन्य न्यासियों द्वारा नामित किया गया हो और यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि यही स्थिति 1959 के अधिनियम की धारा 6(11) के अधीन भी विद्यमान है, क्योंकि वह

भी वर्तमान न्यासी बोर्ड द्वारा नामित व्यक्ति को वंशानुगत न्यासी के रूप में वर्णित नहीं करती। उस निर्णय में किए गए निम्नलिखित अवलोकन का संदर्भ देना उपयोगी होगा :-

> "24. अतः, हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि यदि 1951 के अधिनियम के प्रवर्तन के पश्चात् किसी न्यासी का नामांकन उन न्यासियों के बोर्ड द्वारा किया गया हो, जो 1951 के अधिनियम के प्रवर्तन से पूर्व पद पर थे, अथवा उनके नामांकित व्यक्तियों द्वारा किया गया हो, तो ऐसे व्यक्तियों को 1951 के अधिनियम की धारा 9 की उपधारा (6) के अर्थ में *"वंशानुगत न्यासी"* नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार, यदि ऐसे व्यक्तियों ने, जो स्वयं 1951 के अधिनियम के पश्चात् वंशानुगत न्यासी नहीं थे, चाहे स्वयं अथवा 1951 के पश्चात् अन्य वंशानुगत न्यासियों के साथ मिलकर, न्यासियों का नामांकन किया हो, तो ऐसे नामांकित न्यासी वंशानुगत न्यासी नहीं होंगे। 1959 के अधिनियम के पश्चात् भी स्थिति भिन्न नहीं है।
>
> 26. तथापि, इसका यह अर्थ नहीं है कि जब भी वेंकटरंगैया द्वारा सृजित पाँच पदों में कोई रिक्ति उत्पन्न हो, तब न्यासियों के बोर्ड को प्रदत्त अधिकार 1951 के अधिनियम अथवा 1951 के पश्चात् के अधिनियमों द्वारा पूर्णतः समाप्त कर दिया गया है। समय-समय पर पदासीन पाँच नामांकित न्यासियों के लिए यह खुला रहेगा कि वे न्यासियों के इन पाँच पदों में कोई रिक्ति उत्पन्न होने पर नवीन न्यासियों का नामांकन करें। ऐसे व्यक्ति न्यासी हो सकते हैं, किन्तु उन्हें "वंशानुगत न्यासी" नहीं कहा जा सकता। उन्हें 'अवंशानुगत न्यासी' के रूप में वर्णित किया जाना होगा। उनके अधिकार क्या होंगे, इसका नियमन आवश्यक रूप से अधिनियम के उपबंधों द्वारा किया जाएगा। उनके अधिकारों के प्रश्न में

जाना हमारे लिए आवश्यक नहीं है। इतना कहना पर्याप्त है कि वे "वंशानुगत न्यासी" नहीं हैं।"

जिस निकाय को ऐसा करने का अधिकार प्राप्त हो, उसके द्वारा भी यदि किसी पद के लिए समय-समय पर अथवा किसी निश्चित अवधि हेतु नामांकन, नियुक्ति अथवा विनिर्देशन किया जाता है, तो मात्र उसी आधार पर वह पद वंशानुगत नहीं हो जाता, जिससे ऐसे न्यासियों को 1951 अथवा 1959 के अधिनियमों के अधीन परिभाषित 'वंशानुगत न्यासी' कहा जा सके। धारा 6(11) में परिकल्पित उत्तराधिकार की तीन विधियों में से किसी एक के अनुसार उत्तराधिकार एवं पद के हस्तांतरण के निश्चित नियम ही ऐसे आधार हैं, जिनके बल पर वंशानुगत न्यासी होने का दावा विधिसम्मत रूप से किया जा सकता है।

उपरोक्त अभिनिर्धारणों को दृष्टिगत रखते हुए, इस आधार पर प्रस्तुत किए गए निवेदन कि सभा प्रश्नगत मंदिर की संस्थापक थी अथवा संस्थापक होने के नाते उसे मंदिर के कार्यों, प्रबंधन तथा उसकी संपत्ति, यदि कोई हो, के प्रशासन तथा भावी प्रबंधन की व्यवस्था करने का पूर्ण अधिकार था, महत्वहीन हो जाते हैं और वास्तव में अधिनियम के उपबंधों के अधीन यह निर्धारित करने हेतु हमारे निर्णय की अपेक्षा नहीं करते कि क्या सभा स्वयं को वंशानुगत न्यासी घोषित करवा सकती थी। इसी प्रकार, यह प्रश्न कि कोई निकाय न्यासी हो सकता है अथवा न्यासी बोर्ड का गठन कर सकता है, भी वर्तमान विवाद के लिए अप्रासंगिक है। यहाँ तक कि यदि किसी निकाय के रूप में यह दावा किया जाए कि वह न्यासी है अथवा नहीं है, तब भी, जैसा कि हमने अभिनिर्धारित किया है, वर्तमान वाद के तथ्यों में वह स्वयं को वंशानुगत न्यासी होने का दावा नहीं कर सकता।

निस्संदेह, सामान्यतः किसी न्यास की स्थापना के समय अंशदान देने वाला प्रत्येक दाता स्वयं को उस न्यास का संस्थापक होने का दावा नहीं कर सकता, सिवाय उन मामलों

के जहाँ न्यास निधि में अंशदान देने वाले सभी व्यक्ति स्वयं न्यास के संस्थापक बन जाएँ। किसी व्यक्ति को संयुक्त संस्थापक माना जा सकता है या नहीं, इस प्रश्न का निर्णय केवल अंशदान किए जाने के तथ्य पर आधारित नहीं किया जा सकता, जब तक कि वाद में सिद्ध की गई परिस्थितियाँ, सहवर्ती तथ्य तथा पक्षकारों का पश्चातवर्ती आचरण ऐसे निष्कर्ष का समर्थन न करें। ये सभी प्रश्न भी उस वास्तविक प्रश्न से पृथक प्रतीत होते हैं, जो दावा किए गए पद की वंशानुगत प्रकृति से संबंधित है, और जिसे किसी भी स्थिति में उत्तरदाता-सभा के पक्ष में विधि द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता।

विद्वान एकल न्यायाधीश द्वारा किया गया विश्लेषण सही प्रतीत होता है। जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया गया है, वर्तमान उत्तरदाता द्वारा वाद दायर करके घोषणा की मांग किए जाने से केवल कुछ वर्ष पूर्व ही सभा का गठन हुआ था। "प्रथा" शब्द में दीर्घकालीन निरंतरता तथा समय के पर्याप्त प्रवाह की अवधारणा अंतर्निहित है और वर्तमान वाद की तथ्यात्मक स्थिति भी सभा को प्रथा की अवधारणा के अनुप्रयोग को स्थापित करने में समर्थ नहीं बनाती। ऐसी स्थिति में, उच्च न्यायालय की खंड पीठ का निर्णय अपास्त किया जाता है तथा विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय पुनर्स्थापित किया जाता है। अपील स्वीकार की जाती है तथा व्ययों के संबंध में कोई आदेश नहीं।

वी.एस.एस. अपील अनुज्ञात की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।